''पीहर के आँगन से ससुराल के महलों तक का सफर ..... मेरी आत्मकथा।''

जब से शीर्षक पढ़ा है, मन में भुली–बिसरी यादों की महक सी उठने लगी है, मानो पहली बारिश के बाद मिट्टी से उठने वाली सौधी सी खुशबू, मन बावरा बादल बन यादों के आकाश में विचरने लगा है, सालों से जिन यादों को मन की कोठरी में बंद कर कुंडी लगा रखी थी, मानो आज किसी ने कुंडी खड़काई हो। उन यादों को फिर से जीने का अवसर कैसे छोड़ दूँ ?

कहना मुश्किल है कि मैं आस्तित्व में कैसे आई, मेरी कहानी कैसे शुरू हुई। पाँच भाई–बहनों में सबसे छोटी मैं, मेरे दुनिया में आने की खुशी मनी हो तो मुझे याद नहीं। हाँ, पर जब से होश संभाला है, तब से तो मैं माँ की 'लाडो', पापा की 'जान' और 'अभिमान' और बड़े भाई–बहनों का ''खिलौना'' बन कर रही थी। 'पीहर के आँगन' में रोपा गया वो पौधा थी मैं जो माँ–बाप के स्नेह की खाद और भाई–बहनों की मीठी लड़ाईयों की धूप पा कर दिन ब दिन बढ़ने और निखरने लगा। बड़ी ही अलमस्त, अल्हड़ थी मैं। हँसने–बोलने, उठने–बैठने का कोई शऊर नही। चिड़िया सी एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकती रहती। मौहल्ले के बच्चों के साथ कंचे, गिल्ली–डंडे, ताश खेल कर दिन गुजरते थे हमारे। क्या सुहाने दिन थे वो। हाँ, संसाधन कम थे और खर्चे सीमित पर खुशियाँ कब इनकी मोहताज रही है। उन दिनों तो हम अपने आपको किसी राजकुमारी से कम नहीं समझते थे और हमारे नाजो नखरों से पीहर का आँगन गुँजा करता था।

ऐसे ही मदमस्त वातावरण में कब जीवन की उषा गुजरी और जवानी ने दस्तक दे दी, पता ही नहीं चला। घर में मेरी शादी की सुगबुगाहत होने लगी और देखते ही देखते मेरे 'सपनों का राजकुमार' आँखों की कोरों से उतरकर हकीकत की धरातल पर खड़ा था। नए–नए अहसासों से रोमांचित सगाई और शादी के बीच का समय पलक झपकते ही बीत गया और फिर एक दिन दुल्हन बनी मैं माँ के सीने से लिपटी जार–जार रो रही थी। 'सपनों का राजकुमार' उस समय तो वो राक्षस प्रतीत हो रहा था, जो किसी राजकुमारी को अगुआ कर अपने महल के सात तालों वाले कमरे में बंद कर देता है। आज पौधा अपनी जमीन छोड़ रहा था, जख्मी तो होना ही था। माँ ने दुलार कर कहा, ''पास ही तो है लाडो, जब मर्जी आ जाना अपने घर।'' माँ नजरे चुरा रही थी बोलते वक्त। ससुराल आ तो गई पर अपनी रूह वहीं छोड़ आई मैं।

एक नये बंधन में बंध कर नये रिश्तों को जीने आ तो गई मैं पर ससुराल की ड्योढ़ि पर ठिठकी डरी सी खड़ी थी मैं। बेटी से बहु बनने का लम्बा सफर एक ही दिन में तय किया था, तन और मन शिथिल तो होने ही थे। अब एक नये किरदार को जीना था। पीहर के बेफिक्र अंदाज को सात फेरों के साथ मानो यज्ञ कुंड में आहुति दे आई थी।

कुछ दिन तो युँ ही गुजर गये, फिर शुरू हुआ, जिम्मेदारी का सफर, जहाँ हर मोड़ पर एक बहु व बीवी का फर्ज निभाना था मुझे। सबकी आंकाक्षाओं पर खरा उतरना था मुझे। मेरा हँसना–बोलना, उठना–बैठना एक बहु की गरिमा के अनुरूप करना था मुझे। अपनी जरूरतों से ज्यादा दूसरों की

इच्छाओं का ख्याल रखना था मुझे। यही दस्तुर था दुनिया का पर मन क्यों व्यथित था, समझ नहीं आया। भरा–पुरा ससुराल था, सब अच्छे ही थे, गहने–कपड़ों से अलमारी अटी पड़ी थी पर मन के अहसास मुरझा गये थे।

फिर आया पीहर जाने का दिन, सुबह से ही मन में जोश था और पैरों में उछाल। आज मेरी देह का पीहर में छुटी रूह से मिलन था। देखा, सब कुछ पहले जैसा ही था, वहीं आगन, सीढ़ियाँ, नीम का पेड़, पर आज उसकी हवा मन को पहले सी शीतलता नही प्रदान कर रही थी। खैर दो दिन मजे से बिताकर आ गई ससुराल।

फिर छः महीने नहीं जा पाई पीहर। सातुड़ी तीज पर फिर एक महीने के लिये पीहर जाना था मुझे, मन सौ ख्वाईशें बुन रहा था और दिल हजार करवटें ले रहा था। अबकी बार मेरा सामान गेस्ट रूम में रखा गया, मेरा कमरा बच्चों की पढ़ाई के लिये जो काम आ रहा था। धीरे–धीरे ध्यान से अवलोकन किया तो पाया मेरी सारी निशानियाँ जैसे पुराने कपड़े, किताबें, पोस्टर सब अपनी जगह छोड़ चुके थे। छोटी सी बात थी पर मन में चुभ गई। अहसास हो गया था मुझे, अब ये घर भी उतना अपना नहीं रहा। याद है, एक दिन ऐसे ही ठिनकते हुये पापा से कहा था, ''अब मैं नहीं जाऊँगी वहाँ, मेरा दिल नहीं लगता।'' पापा के चेहरे पर आये सख्ती के भाव ने सब भ्रम मिटा दिया। अबकी बार आई तो अपने साथ अपनी रूह को भी ले आई। जो भी है, अब हम दोनों का ठिकाना ससुराल की चारदीवारी है।

पीहर का मोह हल्का हुआ तो ससुराल में जी पड़ने लगा। धीरे–धीरे इससे नाता हो गया, समय के साथ रिश्तों के रंग भी गहरा गये। अब तो यहीं की होकर रह गई हूँ, पर आज भी जीवन समर से घबरा कर लगता है, कभी माँ के आंचल से लिपट कर 'लाडो' बन जाऊँ। पर पीहर का आंगन अब एक मृगतृष्णा है और वहाँ बिताये दिन मानो रेगिस्तान की तपती रेत पर दिखता पानी के समान छलावा।

यही संसार चक्र है, सृष्टि का नियम। पीहर के आंगन में थी तो एक नाजुक सा पौधा जो अपने पोषण के लिये दूसरों पर निर्भर था। यही पौधा जब ससुराल के महलों में रोपा गया तो परिस्थितियों से लड़कर, पोषण की तलाश में जड़े गहरी कर, एक वटवृक्ष का विराट आकर ले लिया जिसके तले कितने ही नाजुक पौधे पोषित होते है।

यही है मेरा सफर – पीहर के आंगन से ससुराल के महलों तक का। कितना सामान्य फिर भी कितना अनोखा।

–डिम्पल जागेटिया
दक्षिणी राजस्थान प्रदेश
भीलवाड़ा राज.
मो. 98291–25619